न्यायाधीशों की संख्या में कमी के लिये ज़िम्मेवार कौन?

drishtiias.com/hindi/printpdf/who-is-responsible-for-the-pathetic-condition-of-judicial-appointments

सन्दर्भ

- सर्वोच्च न्यायालय को हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान का संरक्षक इसीलिये कहा था क्योंकि वे चाहते थे कि देश की जनता को किसी प्रकार की तकलीफ न हो, शासन सुचारू रूप से चले, सबके मौलिक अधिकार सुरक्षित रहें, धर्म-जाति के नाम पर विवाद न हों।किसी भी देश को भूतकाल के गर्त से निकालकर भविष्य की सुनहरी रौशनी का दर्शन कराने में उस देश की न्यायपालिका की अहम् भूमिका रही है।
- भारत, वह भारत नहीं रहा, जहाँ साम्राज्यवादी शासन द्वारा थोपा गया जजों का एक छोटा समूह ही पुरे भारतवासियों के मामलों की सुनवाई करता था| आज़ादी के बाद जनसंख्या बढ़ी, नए-नए राज्यों की स्थापना हुई, और आर्थिक गतिविधियों में तेज़ी देखी गई|
- सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि धर्म-निरपेक्ष एकीकृत भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को अक्षुण्ण बनाए रखना आवश्यक किन्तु सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया। इन परिस्थितियों में न्यायपालिका की भूमिका पहले से कहीं ज़्यादा व्यापक हो गई। पिछले दो दशकों में भूमंडलीकरण ने लोगों के जीवन को करीब से छुआ है और न्यापालिका की भूमिका एक विवाद निवारक तंत्र से कहीं अधिक बढ़ गई है|
- लेकिन क्या बदली हुई परिस्थितियों में न्यापालिका बदल पाई है? देश में जजों की संख्या इतनी कम क्यों हैं? क्या न्यायपालिका और कार्यपालिका के मध्य टकराव ही भारत का भाग्य बन चुका है? हमें इन सभी सवालों का उत्तर तो खोजना होगा ताकि हम भारत को हमारे संविधान निर्माताओं के सपनों के अनुरूप बना सकें।

भारत में न्यायाधीशों की कमी: एक चिंताजनक स्थिति

- गौरतलब है कि सुप्रीम कोर्ट में 59,000 मामले लंबित हैं, वहीं उच्च न्यायालयों में 4 मिलियन मामले लंबित हैं, यदि निचली अदालतों में लंबित मामलों पर गौर किया जाए तो यह आँकड़ा 25 मिलियन तक पहुँच जाता है।
- पिछले ही साल सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन मुख्य नयायाधीश टी एस ठाकुर ने जजों की कमी का उल्लेख करते हुए एक भावनात्मक भाषण दिया था। न्यायमूर्ति ठाकुर ने कहा था कि लंबित मामलों की भारी संख्या के निपटारे के लिये देश को 70 हज़ार से ज़्यादा न्यायाधीशों की ज़रूरत है। उन्होंने अमेरिका का उदाहरण देते हुए कहा था कि अमेरिका में 9 जज पूरे साल में 81 केस सुनते हैं जबकि भारत में एक जज 2600 केस सुनता है।
- विदित हो कि 1987 में ही विधि आयोग ने सुझाव दिया था कि लंबित मामलों की समस्या से प्रभावी तरीके से निपटने के लिये 44 हज़ार न्यायाधीशों की जरूरत है लेकिन देश में आज भी सिर्फ 18 हज़ार न्यायाधीश हैं। भारतीय न्यायिक व्यवस्था पिछले 30 सालों से जजों के अपर्याप्त संख्याबल से ही काम चला रही है।

- इन आँकड़ों पर नज़र दौड़ाते ही प्रथम दृष्टया यहीं प्रतीत होता है कि देश की न्यायिक व्यवस्था अब किसी काम की नहीं रही। प्रत्येक नागरिक की न्याय तक सुलभ पहुँच एक मौलिक अधिकार है और यह अत्यंत ही चिंतनीय है कि हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या इस मूल-अधिकार की प्राप्ति से वंचित है। एक प्रसिद्ध लेकिन निहायत ही सत्य कथन है कि "जस्टिस डिलेड इज़ जस्टिस डिनाइड" और हमारी न्यायिक व्यवस्था इस कथन को चरितार्थ करती प्रतीत हो रही है।

क्या हो आगे का रास्ता?

- न्यायिक सिद्धांत का तकाजा तो यही है कि सज़ा मिलने से पहले किसी को अपराधी न माना जाए और आरोप का सामना कर रहे व्यक्ति के ऊपर चलाये जा रहे मामले का फैसला एक तय समय-सीमा में हो जाए। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा संभव नहीं हो पा रहा है। इसकी एक वजह न्यायालय और न्यायाधीशों की कमी ज़रूर है,लेकिन मुकदमों को लंबा खिंचने की एक वजह अदालतों की कार्य- संस्कृति भी है। अतः हमें अपनी अदालतों की कार्य- संस्कृति में सुधार के लिये प्रयास करना होगा।
- हमें तत्काल रूप से लंबित पड़े हुए मामलों को निपटाना होगा और इसके लिये जजों नई नियुक्तियाँ करनी होगी। गौरतलब है कि जजों की नियुक्ति के सन्दर्भ में न्यापालिका और कार्यपालिका के मध्य हमेशा से विरोधाभास देखने को मिला है। इस विरोधाभास को खत्म किये बिना न्यायिक नियुक्तियों में तेज़ी लाने की बात करना बेईमानी होगी।

न्यापालिका और कार्यपालिका के मध्य विरोधाभास

- संविधान निर्माताओं ने भारत को एक अनूठा और श्रेष्ठ संविधान दिया है, जहाँ शासन के तीनों अंगों- विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में इष्टतम सामंजस्य देखने को मिलता है; इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि राज्य के सभी अंग एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण किये बगैर अपने-अपने क्षेत्रों में काम करें। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच एक-दूसरे के लिये आपसी सम्मान होना चाहिये, साथ ही इन सभी पर 'बाहरी दबाव' नहीं होना चाहिये।
- 1973 में केशवानंद भारती मामले में सर्वोच्च न्यायालय के 13 न्यायाधीशों की अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ ने अपने फैसले में स्पष्ट कर दिया था कि भारत में संसद नहीं बल्कि संविधान सर्वोच्च है। साथ ही, न्यायपालिका ने टकराव की स्थिति को खत्म करने के लिये संविधान के मौलिक ढाँचे के सिद्धांत को भी पारित कर दिया। इसमें कहा गया कि संसद ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती है जो संविधान के मौलिक ढाँचे को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करता हो।साथ ही, न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार के तहत न्यायपालिका संसद द्वारा किये गए संशोधन की संविधान के मूल ढाँचे के आलोक में जाँच करने के लिये स्वतंत्र है।
- भारतीय शासन व्यवस्था में शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत लागू है। इस सिद्धांत के तहत संविधान में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अधिकारक्षेत्र की लक्ष्मण रेखा साफ साफ खींच दी गई है। इसके अनुसार, कानून बनाना विधायिका का काम है, इसे लागू करना कार्यपालिका का और विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के संविधान सम्मत होने की जाँच करना न्यायपालिका का काम है।
- सरकार में कोई भी पार्टी या नेता क्यों न बैठा हो, उसे कभी यह रास नहीं आता कि अदालतें उसके रोज़मर्रे के काम में हस्तक्षेप करे।

न्यायिक नियुक्तियों के संबंध में प्रयास और विवाद

- गौरतलब है कि केंद्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति और तबादले के लिये राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम बनाया था जिसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। वर्ष 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को यह कहते हुए असंवैधानिक करार दिया था कि 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग' अपने वर्तमान स्वरूप में न्यायपालिका के कामकाज में एक हस्तक्षेप मात्र है।उल्लेखनीय है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति करने वाले इस आयोग की अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायाधीश को करनी थी। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश, केन्द्रीय विधि मंत्री और दो जानी-मानी हस्तियाँ भी इस आयोग का हिस्सा थीं। आयोग में जानी-मानी दो हस्तियों का चयन तीन सदस्यीय समिति को करना था जिसमें प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश और लोक सभा में नेता विपक्ष या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता शामिल थे। आयोग के सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह थी कि अगर आयोग के दो सदस्य किसी नियुक्ति पर सहमत नहीं हुए तो आयोग उस व्यक्ति की नियुक्ति की सिफ़ारिश नहीं करेगा।
- गौरतलब है कि शीर्ष न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति की कॉलेजियम प्रणाली में व्यापक पारदर्शिता लाने के लिये चल रही सुनवाई के दौरान कई सुझाव पेश किये गए। कॉलेजियम प्रणाली में सुधार संबंधी सुझावों के साथ ही योग्यता मापदंड, कॉलेजियम के लिये एक सचिवालय की स्थापना तथा शिकायत निवारण प्रणाली की स्थापना के मुद्दों को पेश किया गया था, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि अभी तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है और शीर्ष न्यायपालिका में न्यायधीशों के बहुत से पद रिक्त हैं।
- न्यायपालिका और कार्यपालिका के मध्य न्यायिक नियुक्तियों को लेकर ज़ारी यह जंग रुकने का नाम नहीं ले रही है। स्वयं को सम्प्रभु मानने की न्यायपालिका की ज़िद और खुद को लोकतंत्र का एकमात्र प्रतिनिधि मानती सरकार के बीच सबसे अधिक नुकसान भारतीय लोकतंत्र को ही हो रहा है।

निष्कर्ष

- ज़ाहिर सी बात है कि अपने काम में हस्तक्षेप किसी को पसंद नहीं आता। इस संदर्भ में सरकार का यह कहना सही है कि जिस तरह सरकार न्यायपालिका की भूमिका में नहीं आ सकती, ठीक उसी मर्यादा का पालन न्यायपालिका को भी कार्यपालिका के संदर्भ में करना चाहिये।
- हालाँकि, इस टकराव में जो एक सकारात्मक बात सामने आई है, वह ये है कि न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों अपना पक्ष रखने में कोई संकोच नहीं कर रहे। संवाद की यही प्रक्रिया लोकतांत्रिक समाज की पहचान है, लेकिन इसमें दोनों पक्षों को कटुता एवं श्रेष्ठता के भाव से मुक्त रहना चाहिये।
- कार्यपालिका को ये गुमान छोड़ना पड़ेगा कि वह सर्वशक्तिमान है, वहीं न्यायपालिका को भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वह अम्पायर या रैफरी तो हो सकती है परन्तु मैदान में मौजूद रहने के बावजूद वह खिलाड़ी की भूमिका अख्तियार नहीं कर सकती।
- प्रजातंत्र में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों का महत्त्व एकसमान है, परन्तु आदर्श स्थिति वही होती है जिसमें सभी अपनी–अपनी मर्यादा का बिना राग–द्वेष के पालन करें।
- अगर न्यायपालिका और कार्यपालिका के संबंध प्रगाढ़ होंगे तभी न्यायिक नियुक्तियाँ भी सुचारू ढंग से हो पाएंगी। अतः बेहतर यही है कि सरकार और सुप्रीम कोर्ट न्यायिक नियुक्तियों को लेकर आपस में विचार विमर्श के बाद कोलेजियम व्यवस्था को पारदर्शी बनाए, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में टकराव की स्थिति बनने ही न दिया जाय। इसी से लोकतांत्रिक व्यवस्था सुदृढ़ होगी।